गांधी स्मारक निधि का मासिक मुखपत्र

संस्थाकुल

वार्षिक सहयोग राशि	: रु. 20.00
एक प्रति	: रु. 2.00
कुल पृष्ठ	: 12

मई, 2023 वर्ष – 54 अंक – 2

दस्तावेज़ :

जय जगत् का उद्घोष

आचार्य विनोबा

पूर्व पाकिस्तान (अब बांग्लादेश) की पहली ही सभा[x] में मैंने कहा कि हमें बहुत खुशी हो रही है कि हम पाकिस्तान में बैठे हैं, यह हमारा देश है। मैं हिंदुस्तान और पाकिस्तान में कुछ भी फरक महसूस नहीं करता। वही हवा है, वही जमीन है, वही आदमी है और वही हृदय है। कुछ भी फरक नहीं। मैं मानता हूं कि सब पृथ्वी हमारी है और हम सब पृथ्वी के सेवक हैं। यह एक आकस्मिक घटना है कि हम किसी एक देश में जन्मे या मरे। मैं यहां महसूस करता हूं कि हम यहां के हैं। सब मानवसमाज हमारे अंतर्गत है। मैं जहां जाता हूं, वहां **'जय जगत्'** कहता हूं।

मेरी पहली दो–तीन सभाओं में लोगों ने 'पाकिस्तान जिंदाबाद' का नारा लगाया। मैं **'जय जगत्'** बोलता था। धीरे–धीरे वहां भी **'जय जगत्'** ही चल पड़ा। मैं 'जय हिंद' बोलता तो 'पाकिस्तान जिंदाबाद' और 'जय हिंद' का झगड़ा हो जाता। **'जय जगत्'** में सब प्रेम से एक हो गये।

मैं अपने साथ **गीता–प्रवचन** ले गया था। उसकी 800 प्रतियां 15 दिन की यात्रा में बिकीं। उनमें 300 प्रतियां मुसलमानों ने खरीदीं। उस पर मैं प्रेमपूर्वक हस्ताक्षर करता था। भारत में भी हजारों मुसलमानों ने **गीता–प्रवचन** ली हैं।

> **"हमारी जन्मभूमि का कल्याण तो इसमें है, कि उसके दो धर्म हिन्दू और इस्लाम मिलकर एक हो जाएं।"**
>
> **– स्वामी विवेकानंद**

कुरआनशरीफ का मेरा चयन उस समय तैयार था और उसकी पुस्तक प्रकाशित होनेवाली थी। लेकिन उससे पहले ही कराची के 'डॉन' (अखबार) ने उस पर आलोचना की कि पिछले 1300 वर्षों में हमारे धर्मग्रंथ में इस तरह का फरक किसी ने किया नहीं था, अब वह करनेवाला यह काफ़िर निकला है। तब हिंदुस्तान के तमाम मुसलमान अखबारों ने मेरा समर्थन किया कि यह आलोचना उचित नहीं, कुरान का ऐसा सार पहले भी निकाला गया है, इसलिए ग्रंथ पढ़े बिना उसकी आलोचना करना गलत है। इसका मेरे चित्त पर बहुत असर हुआ। मैं मानता हूं कि मुसलमानों का मुझ पर बहुत बड़ा उपकार है।

पाकिस्तान में मैंने मौन प्रार्थना चलायी। तो उसमें हजारों हिंदू–मुसलमान–ईसाई सब आये। उस पर भी 'डॉन' (कराची) ने आलोचना की कि यह मनुष्य हिंदुओं की गाथा चलाना चाहता है। परंतु पूर्व पाकिस्तान के अखबारों ने ऐसी आलोचना नहीं की। मैंने इसका जवाब दिया कि आप लोग अपने घर में जो प्रार्थना करते हैं – आरती करते हैं या नमाज पढ़ते हैं उसका मैं विरोध नहीं करता; लेकिन **सब मिल कर मी कोई प्रार्थना हो सकती है या नहीं ? अगर न हो सकती हो तो ईश्वर के ही टुकड़े हो जायेंगे।**

[x] भूदान–आन्दोलन के दौरान तब के पूर्व पाकिस्तान (अब बांग्लादेश) में 5 से 20 सितंबर, 1962 तक चली पदयात्रा की पहली सभा में।

एतत् अनुशासनम्

(25 सितम्बर 1975 : मौन–समाप्ति के बाद प्रथम प्रवचन में) मेरा 'अनुशासन–पर्व' का अर्थ मैंने थोड़े में रखा था। 'अनुशासन–पर्व' शब्द महाभारत का है। परंतु उसके पहले वह उपनिषद में आया है। प्राचीन काल का रिवाज था। विद्यार्थी आचार्य के पास रह कर बारह साल विद्याभ्यास करता था। विद्याभ्यास पूरा कर जब वह घर जाने निकलता था तब आचार्य अंतिम उपदेश देते थे। उसका जिक्र उपनिषद में आया है, **एतत् अनुशासनम्। एवं उपासितव्यम्** – इस अनुशासन पर आपको जिंदगी भर चलना है। आचार्यों का होता है अनुशासन और सत्ता वालों का होता है शासन। अगर शासन के मार्गदर्शन में दुनिया रहेगी तो दुनिया में कभी भी समाधान रहनेवाला नहीं है। शासन के मार्गदर्शन में क्या होगा ? समस्या सुलझेगी; लेकिन सुलझी हुई फिर से उलझेगी। यह तमाशा आज दुनिया भर में चल रहा है। 'ए' से 'जेड' तक, अफगानिस्तान से जांबिया तक 300–350 शासन दुनिया में होंगे। फिर उनकी गुटबंदी चलती है। सबदूर असंतोष, मारकाट ! शासन के आदेश के अनुसार चलनेवालों की यह स्थिति है। उसके बदले अगर आचार्यों के अनुशासन में दुनिया चलेगी तो दुनिया में शांति रहेगी। आचार्य होते हैं, जिनका वर्णन मैंने किया है गुरू नानक की भाषा में – निर्भय, निर्वैर और उसमें मैंने जोड़ दिया है निष्पक्ष ! और जो कभी अशांत होते नहीं, जिनके मन में क्षोभ कभी नहीं होता। हर बात में शांति से सोचते हैं और जितना सर्वसम्मत होता है विचार, उतना लोगों के सामने रखते हैं। उस मार्गदर्शन में अगर लोग चलेंगे, तो लोगों का भला होगा और दुनिया में शांति रहेगी। यह अनुशासन का अर्थ है – **आचार्यों का अनुशासन!** ऐसे निर्भय, निर्वैर, निष्पक्ष आचार्य जो मार्गदर्शन देंगे उसका, उनके अनुशासन का विरोध अगर शासन करेगा तो उसके सामने सत्याग्रह करने का प्रसंग आयेगा। लेकिन मेरा पूरा विश्वास है कि भारत का शासन ऐसा कोई काम नहीं करेगा, जो आचार्यों के अनुशासन के खिलाफ होगा।

(अहिंसा की तलाश : पृष्ठ 165–166, 265–266)

कोई है वाल्मीकि ?

महादेव देसाई

खेड़ा तथा बारडोली के गांवों में गांधीजी एवं सरदार के साथ बिताये चार दिन मेरे जीवन के आनंदमय दिन के रूप में गिने जा सकते हैं।

गत वर्ष इन गांवों में जो घटनाएं घटीं, राष्ट्रयज्ञ में इन लोगों ने जो योगदान (बलिदान) दिया, उसका वर्णन करने के लिये तो कोई वाल्मीकि चाहिए; किन्तु आज जब यज्ञ की पूर्णाहुति हो रही है तब उन दृश्यों का वर्णन करने के लिए भी ऐसी ही देवी कल्पना की आवश्यकता है।

किन्तु मैंने तो इसे लेखक की दृष्टि से देखने की अपेक्षा एक साधक की दृष्टि से देखा और हर्षाश्रु से आंखों को पावन किया।

''त्याग एवं संकट सहन की परिसीमा होने के बावजूद उनसे आगे बढ़ते अभिमान के अभाव की परिसीमा से हृदय अत्यधिक विनम्र हुआ, और इन भले किसानों की अंधी श्रद्धा का एक कतरा भी हममें होता तो कितना अच्छा होता, ऐसे उद्‌गार निकल पड़े।''

सरदार गांव–गांव घूमते हुए सब लोगों की तपश्चर्या की प्रशंसा करते हुए कहते हैं, ''आप सबने काफी कष्ट सहन किया, लेकिन आपने जैसी इज्जत कमाई ऐसी इज्जत थोड़े ही लोग कमा सकते हैं।'' मुझे नहीं लगता कि इन लोगों को इस इज्जत का कोई खयाल भी होगा।

(लेखक) ब्रेल्सफोर्ड ने बारडोली और खेड़ा को अमेरिका तथा यूरोप में अमर कर दिया है, लेकिन इसकी इन किसानों को क्या खबर ?

''किसानों को जेल जाकर भले ही प्रसिद्धि प्राप्त करने का अवसर न मिले, और उनकी रिपोर्ट अखबार में छपे तो उसे पढ़ने की फुरसत और ज्यादातर जानकारी न हो किन्तु इन परिस्थितियों में जिनको खुद के हृदय में देवता का स्थान दिया है, उनके एक शब्द को स्वीकार कर असीमित संकट सहन करने वाले किसानों को हज़ार बार धन्यवाद है।''

(गुजरात के ग्रामीण अंचलों में चले सत्याग्रह से संबंधित 15.03.1931 के महादेवभाई देसाई की डायरी से, उन्हीं के कथन से लिया गया एक अंश।)

परीक्षाएं पास करके बारिस्टर कहलाया

मो. क. गांधी

कानून की पढ़ाई सरल थी। बारिस्टर मजाक में 'डिनर (भोज के) बारिस्टर' ही कहलाते थे। सब जानते थे कि परीक्षा का मूल्य नहीं के बराबर है। मेरे समय में दो परीक्षाएं होती थीं – रोमन लॉ की और इंग्लैंड के कानून की। दो भागों में दी जानेवाली इस परीक्षा की पुस्तकें निर्धारित थीं। पर उन्हें शायद ही कोई पढ़ता था। रोमन लॉ पर लिखे संक्षिप्त 'नोट' मिलते थे। उन्हें पन्द्रह दिन में पढ़कर पास होनेवालों को मैंने देखा था। यही चीज इंग्लैंड के कानून के बारे में भी थी। उस पर लिखे नोटों को दो–तीन महीनों में पढ़कर तैयार होने वाले विद्यार्थी भी मैंने देखे थे। परीक्षा के प्रश्न सरल, परीक्षक उदार। रोमन लॉ में पंचानवे से निन्यानवे प्रतिशत तक लोग उत्तीर्ण होते थे, और अंतिम परीक्षा में पचहत्तर प्रतिशत या उससे भी अधिक। इस कारण अनुत्तीर्ण होने का डर बहुत कम रहता था। फिर परीक्षा वर्ष में एक बार नहीं, चार बार होती थी। ऐसी सुविधावाली परीक्षा किसी के लिए बोझरूप हो ही नहीं सकती थी।

पर मैंने उसे बोझ बना लिया। मुझे लगा कि मुझे मूल पुस्तकें पढ़ ही जानी चाहिए। न पढ़ने में मुझे धोखेबाजी लगी। इसलिए मैंने मूल पुस्तकें खरीदने पर काफी खर्च किया। मैंने रोमन लॉ को लेटिन में पढ़ डालने का निश्चय किया। विलायत की मैट्रिक्यूलेशन परीक्षा में मैंने लेटिन सीखी थी, वह यहां उपयोगी सिद्ध हुई। यह पढ़ाई व्यर्थ नहीं गई। दक्षिण अफ्रीका में रोमन–डच–लॉ (कानून) प्रमाणभूत माना जाता है। उसे समझने में जस्टिनियन का अध्ययन मेरे लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ।

इंग्लैंड के कानून का अध्ययन मैं नौ महीनों में काफी मेहनत के बाद समाप्त कर सका, क्योंकि ब्रूम के 'कॉमन लॉ' नामक बड़े परन्तु दिलचस्प ग्रंथ का अध्ययन करने में ही काफी समय लग गया। स्नेल की 'इक्विटी' को रसपूर्वक पढा, पर उसे समझने में मेरा दम निकल गया। व्हाइट और ट्यूडर के प्रमुख मुकदमों में से जो पढ़ने योग्य थे, उन्हें पढ़ने में मुझे मजा आया और ज्ञान भी प्राप्त हुआ। विलियम्स और एडवर्ड्ज की स्थावर सम्पत्ति–विषयक पुस्तक और गुडीव की जंगम सम्पत्ति पर लिखी पुस्तक मैं रसपूर्वक पढ़ सका था। विलियम्स की पुस्तक तो मुझे उपन्यास–सी लगी। उसे पढ़ते समय जी जरा भी नहीं ऊबा। कानून की पुस्तकों में इतनी ही रुचि के साथ हिन्दुस्तान आने के बाद मैंने **मेइन** का 'हिन्दू लॉ' पढ़ा था। पर हिन्दुस्तान के कानून की बात यहां नहीं करूंगा।

परीक्षाएं पास करके मैं 10 जून, 1891 के दिन बारिस्टर कहलाया। 11 जून को ढाई शिलिंग देकर इंग्लैंड के हाईकोर्ट में अपना नाम दर्ज कराया और 12 जून को हिन्दुस्तान के लिए रवाना हुआ।

(सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा : पृष्ठ 69–70)

30 जनवरी–शहीद दिवस पर 'सद्‌भावना पदयात्रा'

समाज में बढ़ती हिंसा, नफरत के वातावरण में आपसी प्रेम व भाईचारा बढ़े इस उद्देश्य से, गांधीजी के 75वें शहादत दिवस पर 30 जनवरी को सर्वोदय मंडल की ओर से 'मणिभवन गांधी संग्रहालय' से 'मुंबई सर्वोदय मंडल' तक 'सद्‌भावना पदयात्रा' का आयोजन किया गया। इस पदयात्रा में मुंबई के विभिन्न कॉलेजों के एनएसएस से जुड़े विद्यार्थी बड़ी संख्या में शामिल हुए। सर्वोदय मंडल के प्रमुख लोगों ने अंत में आयोजित हुई सभा को सम्बोधित किया। शाम 5.18 बजे (जिस समय गांधीजी की हत्या की गई थी) गांधीजी को श्रद्धांजलि अर्पित कर कार्यक्रम का समापन किया गया।

कोल्हापुर जिला मध्यवर्ती कारागृह में गांधी शांति परीक्षा

जेल के बंदियों में प्रायश्चित की भावना जगे और उन्हें गांधीजी के बताए हुए सत्य–अहिंसा–प्रेम के रास्ते पर चलने के लिए प्रेरित करने हेतु, जनवरी के महीने में कोल्हापुर जिला मध्यवर्ती कारागृह में 'गांधी शांति परीक्षा' का आयोजन किया गया था, जिसमें कुल 127 बंदी व जेल के कर्मचारी–अधिकारी शामिल हुए। इस परीक्षा के बाद पारितोषिक वितरण समारोह 30 जनवरी को आयोजित किया गया था। सभी परीक्षार्थियों को जेल अधीक्षक के हाथों से प्रमाण–पत्र व खादी के कपड़े भेंट स्वरूप दिए गए। इस परीक्षा के आयोजन के लिए सर्वोदय मंडल को कारागृह प्रशासन की ओर से प्रशंसा पत्र देकर सम्मानित किया गया।

सामयिकी :

सत्ता का चहेता 'चुनाव आयोग'

कुमार प्रशांत

सर्वोच्च न्यायालय का फैसला आ गया है कि अब 'चुनाव आयोग' का चयन तीन सदस्यों की एक समिति करेगी न कि प्रधानमंत्री के इशारे पर नौकरशाही के चापलूसों का पत्ता फेंटकर चयन किया जाएगा। यह फैसला तब तक लागू रहेगा, जब तक संसद इसके लिए कोई नया कानून नहीं बनाती। स्वतंत्र भारत के इतिहास में यह पहली बार हुआ है कि न्यायपालिका ने विधायिका को उसकी भूमिका और मर्यादा इस तरह आदेश देकर समझाई है।

सर्वोच्च न्यायालय के इस फैसले के बाद से सत्तापक्ष में एकदम सन्नाटा है। विपक्ष ने भी थोड़ी–बहुत प्रतिक्रिया से ज्यादा कुछ नहीं कहा है। यह सन्नाटा क्यों है भाई ? इसलिए कि सभी जान रहे हैं कि सर्वोच्च न्यायालय का यह फैसला सत्ता व विपक्ष दोनों के पर कतर रहा है। जिस हम्माम में सब नंगे हों, उसमें तौलिये की बात करना सबकी नंग खोल देता है।

सर्वोच्च न्यायालय का यह फैसला सत्तापक्ष की नीयत पर तीखी टिप्पणी करता है। यह टिप्पणी इतनी कठोर व मर्म पर चोट करने वाली है कि यदि हमारी व्यवस्था में थोड़ी भी लोकतांत्रिक आत्मा बची होती तो 'चुनाव आयोग' के वर्तमान अध्यक्ष का इस्तीफा कब का हो गया होता। सरकार का यदि कोई लोकतांत्रिक चरित्र होता तो उसने इस फैसले के तुरंत बाद वर्तमान 'चुनाव आयोग' भंग कर दिया होता तथा प्रधानमंत्री–नेता प्रतिपक्ष–प्रधान न्यायाधीश की समिति ने रातों–रात बैठकर नया 'चुनाव आयोग' गठित कर दिया होता।

ऐसा हुआ होता तो सत्तापक्ष को अपनी विकृत लोकतांत्रिक छवि सुधारने तथा 'चुनाव आयोग' को अपनी हास्यास्पद स्थिति से बचने का मौका मिल जाता, लेकिन जो लोकतांत्रिक आत्मा कहीं बची ही नहीं है, उसकी कोई लहर उठे भी तो कैसे ? हमारी संसद में भी इतनी नैतिक शक्ति नहीं बची है कि वह खुद को सुधार सके, बे–पटरी हुई अपनी गाड़ी को पटरी पर लौटा सके।

लोकतंत्र का पेंच यह है कि उसमें संसद बनती भले बहुमत के बल पर है पर चलती परस्पर विश्वास व सहयोग के बल पर ही है। ऐसा नहीं होता तो भारतीय संसद के इतिहास में अब तक की सबसे बड़े बहुमत से बनी दो सरकारें – इंदिरा गांधी व राजीव गांधी की – ताश के पत्तों–सी बिखर नहीं जाती! इसलिए लोकतांत्रिक नैतिकता का तकाजा है कि संवैधानिक संस्थाएं एक–दूसरे की सुनें, एक–दूसरे का सम्मान करें।

जिस संसदीय लोकतंत्र की रजत जयंती मनाने की हम तैयारी कर रहे हैं, वह इतने वर्षों में हमें यह भी नहीं सिखा सकी कि हमारी सारी लोकतांत्रिक संस्थाएं संविधान के गर्भ से पैदा हुई हैं इसलिए इनमें कोई संप्रभु नहीं है। संप्रभु है, इस देश की जनता, जिसने अपना संविधान बनाकर, अपने ऊपर लागू किया है। तो वह संविधान सबका पिता है। पिता के संरक्षण का दायित्व सबका है, लेकिन न्यायपालिका उसकी खास प्रहरी है।

संविधान ने जितनी संस्थाएं बनाई हैं उनमें से किसी को उसने संप्रभु नहीं बनाया है, बल्कि इन सबका परस्परावलंबन निर्धारित किया है, सबकी दुम एक–दूसरे से बांध दी है। विधायिका कानून बनाने की सर्वोच्च संस्था है। न्यायपालिका उन कानूनों की वैधता जांचने वाली सर्वोच्च संस्था है; न्यायपालिका का कोई भी निर्णय संसद पलट सकती है। लेकिन संसद कोई भी ऐसा निर्णय नहीं ले सकती, जिससे हमारे संविधान का बुनियादी ढांचा प्रभावित होता हो, और यह फैसला सिर्फ, और सिर्फ न्यायपालिका कर सकती है कि कब, कहां और किसने यह लक्ष्मण–रेखा पार की है।

कार्यपालिका विधायिका के निर्देश पर काम करती है, लेकिन वह 'पे–प्रमोशन–पेंशन' के पीछे भागती चापलूसों की जमात नहीं है। असंवैधानिक निर्देश मानने के लिए वह लाचार नहीं है। उसमें अनैतिक व असंवैधानिक निर्देश मानने से इंकार करने का नैतिक बल होना चाहिए। वह न्यायपालिका की मदद लेने को भी स्वतंत्र है।

लोकतंत्र के विकास–क्रम में एक चौथा खंभा भी विकसित हुआ है जिसे आज मीडिया कहते हैं। स्वतंत्रता, साहस व विवेक के तीन खंभों पर यह मीडिया टिका हुआ है जो स्वायत्त व स्वतंत्र तो है, लेकिन अपने लिखे–बोले–दिखाए हर शब्द के लिए वह समाज, न्यायपालिका व संसद के प्रति जवाबदेह भी है। इन चारों के बीच यह गजब की स्वायत्तता व गजब का परस्परावलंबन है, जिसे संविधान ने रचा है। इसके आलोक में सारी संवैधानिक संस्थाओं को अपना आकलन करना चाहिए।

इस आलोक में हमें अपनी न्यायपालिका को देखना चाहिए तथा न्यायपालिका को इस आईने में अपनी सूरत देखनी चाहिए। हम जब इस आलोक में अपनी न्यायपालिका को देखते हैं तो हमें अफसोस होता है; न्यायपालिका जब इस आईने में खुद को देखेगी तो डर जाएगी। मनुष्य ढेरों कमजोरियों का पुतला है – इस हद तक कि यह कहावत ही बन गई है कि गलती करना मनुष्य होने की पहचान है – 'टू इर इज ह्यूमन!' यह जानने व मानने के बाद हमने ही कुछ ऐसी संस्थाएं बनाईं, कुछ ऐसे पद बनाए जिनकी नैतिक जिम्मेवारी है कि वे सामान्य मनुष्यों की सामान्य कमजोरियों से ऊपर उठकर सोचें व व्यवहार करें।

जेबकतरा लोभ व बेईमानी की मानवीय कमजोरी का एक उदाहरण है। वह भीड़ का फायदा उठाकर जेब काटता है। उससे नागरिक व पुलिस निबटते ही रहते हैं, लेकिन पुलिस ही जेबकतरा बन जाए तो हम क्या करेंगे ? इसलिए जरूरी है कि पुलिस का ऐसा प्रशिक्षण किया जाए, उसमें ऐसा दायित्व–बोध भरा जाए कि वह सामान्य मानवीय कमजोरियों से ऊपर उठकर काम करे। जब पुलिस ऐसी कल्पना पर खरी नहीं उतरती तो हम उसके प्रशिक्षण की नई योजना पर काम करते हैं। सारे पुलिस आयोग इसी कोशिश में बने हैं।

ऐसा ही विधायिका, न्यायपालिका और कार्यपालिका के साथ भी है। इनकी निरंतर पहरेदारी होनी चाहिए – आंतरिक भी और बाह्य भी। हमारी न्यायपालिका खुद की पहरेदारी कैसे करती है ? उसने 'चुनाव आयोग' के गठन के बारे में जो फैसला दिया है क्या वह बीमारी उसे आज दिखाई दी है ? यह तो पहले दिन से ही हमें दिखाई दे रहा था कि चुनाव यदि संसदीय लोकतंत्र का सबसे बड़ा अवलंबन है तो उसकी निगरानी करने वाली संस्था को मजबूत, आत्मनिर्भर तथा सत्तानिरपेक्ष होना चाहिए। जो हमें दिखाई दे रहा था वह न्यायपालिका को क्यों नहीं दिखाई दिया ?

> "जब तक लाखों लोग भूख और अज्ञानता में जीते हैं, मैं हर उस आदमी को गद्दार मानता हूं जो, उनके खर्च पर शिक्षित होते हुए भी उनकी तरफ जरा भी ध्यान नहीं देते।" – **स्वामी विवेकानंद**

उसका यह अपराध बहुत संगीन हो जाता है क्योंकि संविधान ने उसे यही जिम्मेवारी दी है कि वह संवैधानिक संस्थाओं की ऐसी हर कमजोरी पर नजर रखे, उसे जांचे–परखे और उसे ठीक करने की ठोस पहल करे। अपने वक्त में टी. एन. शेषन ने यह दिखलाया भी था कि 'चुनाव आयोग' यदि साहसपूर्ण स्वतंत्रता से काम करता है तो संसदीय लोकतंत्र को संभालने में कितनी मदद मिलती है। न्यायपालिका ने वह संकेत क्यों नहीं समझा ? उसने उस दिशा में क्यों काम नहीं किया ? बीमारी इतनी बिगड़ जाए कि मरीज मरणासन्न हो जाए, यह डॉक्टर की विफलता है। मरणासन्न मरीज को बचाकर वाहवाही लूटने से यह बात छिपाई नहीं जा सकती कि आप अपनी प्राथमिक जिम्मेवारी में विफल हुए हैं। ऐसा ही न्यायपालिका के साथ भी हो रहा है।

हमारी न्यायपालिका इस कदर समान्य मानवीय कमजोरियों की गिरफ्त में है कि वह सामान्य मनुष्य जितना संयम, समझदारी व साहस तक नहीं दिखा पाती। वह सत्ता से डरती है, वह सत्ता की कृपाकांक्षी होती है, वह केरियररिस्ट है, वह पार्टीबाजी की घटिया मानसिकता की शिकार है। वह मुकदमा जीतने के लिए शील व विवेक की कीमत नहीं करती। वह मानवीय कमजोरियों से ऊपर उठने का कोई तरीका विकसित नहीं कर सकी है।

राहुल गांधी लंदन में क्या कहते हैं इस पर चिल्ल–पों करने वाले इस पर क्यों चुप्पी साध लेते हैं कि हमारा लोकतंत्र क्या कहता है ? वह संवैधानिक ऑक्सीजन की मांग कर रहा है। वह कह रहा है कि मेरी आवाज सुनो!

राहुल की बर्खास्तगी : 10 बड़े सवाल

योगेन्द्र यादव

'आप लोग बिना बात का बतंगड़ क्यों बनाते हो ? बड़ी सीधी–सी बात है। राहुल गांधी ने किसी का अपमान किया। उसने मुकदमा ठोक दिया। जज ने राहुल गांधी को दोषी पाया और दो साल की सजा सुनाई। ऐसी सजा मिलने पर संसद की सदस्यता आप–से–आप ही समाप्त हो जाती है, सो हो गई। इससे मोदी सरकार या अडाणी का क्या संबंध ? आप लोग हर चीज में षड्यंत्र क्यों ढूंढ़ते हो ?' पार्क में घूमते उस बुजुर्ग ने यह सब कहा।

आदमी सीधे–सादे लग रहे थे, किसी पार्टी के कार्यकर्त्ता या समर्थक नहीं। सवाल भी सीधे–सादे, बाज़िब–से थे। मैंने कहा : आपकी इस बात से मैं सहमत हूं कि हमें बेवजह षड्यंत्र नहीं ढूंढ़ते रहना चाहिए। लेकिन आप भी यह तो मानेंगे न कि हर बात को गहराई से देखना जरूर चाहिए? राहुल गांधी के संसद से निलंबन के मामले में 10 बातें ऐसी हैं जिन पर आप सोचें, यह मैं चाहता हूं।

1. राहुल गांधी ने 13 अप्रैल 2019 को वह भाषण दिया कर्नाटक के कोलार में। उनके ख़िलाफ़ मानहानि का मुकदमा दायर हुआ 16 अप्रैल 2019 को गुजरात के सूरत में। मुकदमा उसने दायर किया जिसका नाम भी राहुल ने नहीं लिया था। बात इतनी सामान्य नहीं है। मुकदमा करने वाल सूरत का कोई साधारण नागरिक नहीं, भाजपा का विधायक तथा पूर्व मंत्री पूर्णेश मोदी है। अब आपको नहीं लगता कि कहानी के पीछे किसी का कोई इशारा रहा होगा ?

2. मुकदमा शुरू हुआ तो तत्कालीन जज ए.एन. दवे ने हर पेशी पर राहुल गांधी को हाजिर होने का आदेश देने से इंकार कर दिया और मुक़दमे की तुरंत सुनवाई का आदेश दिया। पूर्णेश मोदी ने गुजरात हाईकोर्ट जाकर अपने ही मुकदमे की सुनवाई पर रोक लगवाई। आम तौर पर आरोपी मुकदमे को टालने–रोकने की कोशिश करता है, शिकायत करने वाला नहीं। आसानी से बात समझी जा सकती है कि पूर्णेश मोदी को सलाह दी गई कि यह जज अपने अनुकूल नहीं है, जज के तबादले का इंतजार करो। इंतजार चलता रहा।

3. अडाणी मामले में संसद में राहुल गांधी के भाषण के एक सप्ताह के भीतर, 2019 से ठंडे बस्ते में रखवाए अपने केस को पूर्णेश मोदी ने दोबारा सुनवाई के लिए जीवित करवाया। आपको नहीं लगता कि पर्दे के पीछे कोई राजनीतिक नीयत काम कर रही थी ?

4. शिकायतकर्ता जब मुकदमा रुकवाना चाहता है, तो हाईकोर्ट तुरंत रोक देता है; जब वह दोबारा उसे चालू करवाना चाहता है तो हाईकोर्ट तुरंत चालू कर देता है! ऐसा हाईकोर्ट समान्यतः आपको हमारे यहां मिलता है क्या जहां आप जो मांगें वह हाजिर हो ?

5. जब दोबारा मुकदमा शुरू होता है तो जज साहबान बदल चुके हैं। अब जज की कुर्सी पर हैं हरीश हंसमुखभाई वर्मा, जो पिछले छह महीनों में दो–दो प्रमोशन देकर यहां तक पहुंचाए गए हैं। अब आप सोचें कि दाल में कुछ काला है कि दाल ही काली है !

6. मुकदमा दोबारा शुरू होता है, तो सब कुछ बिजली की गति से होता है – एक महीने के भीतर सारी सुनवाई पूरी हो जाती है, गवाहियां–बहस सब खत्म और फैसला सामने ! क्या हमारी अदालतें ऐसी ताबड़तोड़ सुनवाई दूसरे मामलों में भी करती हैं ? सोचिएगा, क्या जज साहब को कहीं से, किसी ने डेडलाइन तो नहीं दे रखी थी ?

7. राहुल गांधी ने अपने कर्नाटक के भाषण में कुछ नामी ठगों के नाम लिये और फिर पूछा था कि इन सब चोरों का नाम मोदी क्यों है ? यह नहीं कहा था कि जिनका नाम मोदी है, वे सब चोर क्यों हैं। सुप्रीम कोर्ट पहले ही स्पष्ट कर चुका है कि किसी वर्ग या समुदाय का अपमान होने भर से आप निजी मानहानि का आरोप नहीं लगा सकते, जब तब कि सीधे–सीधे आपका नाम न लिया गया हो। अब राहुल गांधी ने न तो पूर्णेश मोदी का नाम लिया, न उनकी तरफ कोई इशारा ही किया। ऐसे में निचली कोई अदालत सुप्रीम कोर्ट के निर्देश की अनदेखी करते हुए उन्हें दोषी कैसे करार दे सकती है ?

8. सजा की अवधि की बात देखिए। देश के बड़े–बड़े वकीलों में से कोई भी यह नहीं बता पाया कि मानहानि के ⇨

'तीन पौण्ड' के नासूर से मुक्ति की कहानी

डॉ. डी. एस. भंडारी – डॉ. अवध प्रसाद

बात करीब सन् 1884 की है जब गांधीजी ने दक्षिण अफ्रीका में वकालत करना प्रारम्भ किया था। एक दिन बाल सुन्दम् नाम का एक तमिल निवासी उनके पास अपना कपड़ा उतार कर रोता हुआ आया। उसके कपड़े फटे हुए थे, वह डर के मारे कांप रहा था और उसके आगे के दो दांत टूटे थे। उसके अंग्रेज मालिक ने उसे बुरी तरह से मारा था। वह गांधीजी के पास न्याय मांगने के लिए आया था। बाल सुन्दम् एक प्रतिष्ठित गोरे के यहां मजदूरी करता था। मालिक को किसी वजह से गुस्सा हुआ होगा, उसने बालसुन्दम् की जमकर पिटाई की। परिणाम स्वरूप बाल सुन्दम् के दो दांत भी टूट गये थे। गांधीजी ने उसे कपड़ा पहनाया और एक आदमी के साथ डॉक्टर के पास उपचार के लिए भेजा।

सन् 1860 में जब अंग्रेज दक्षिण अफ्रिका गये थे तब उन्हें लगा कि यहां पर गांजे की खेती अच्छी होगी। इसके लिए उन्होंने मजदूरों को भारत से बड़ी संख्या में बुलाने का फैसला किया, क्योंकि वे जानते थे कि भारत के मजदूर खेती करने में बाकी लोगों से ज्यादा कुशल हैं। इसलिए नेटाल निवासी गोरों ने भारत सरकार से विचार–विमर्श करके हिन्दुस्तानी मजदूरों को नेटाल लाने की अनुमति प्राप्त कर ली। उन्हें यह लालच दिया गया कि पांच साल तक मजदूरी करने का बंधन रहेगा और पांच साल बाद उन्हें स्वतंत्र रूप से नेटाल में बसने की छूट रहेगी, उनको जमीन का मालिक बनने का पूरा अधिकार भी होगा। उस समय गोरे चाहते थे कि हिन्दुस्तानी मजदूर पांच साल बाद जमीन जोतें और उसका लाभ नेटाल को दें। जो मजदूर इन शर्तों को मानकर दक्षिण अफ्रिका आये वे गिरमिटया कहे गये और उनके लिए अलग कानून बनाये गये।

गांधीजी ने डॉक्टर से मारपीट से लगी चोटों की एक रिपोर्ट प्राप्त की। गिरमिटया कानून के अधिकारी से मिले और पूरी जानकारी दी। उसने सुझाव दिया कि अगर कोई अंग्रेज व्यक्ति सुन्दम् को दुबारा रखने के लिए तैयार हो जायेगा तो वे उसे मुक्त कर देंगे। गांधी भी यही चाहते थे। उन्होंने अपने एक जान–पहचानवाले अंग्रेज व्यक्ति से

➪मामले में किसी को दो वर्ष की जेल की सजा सुनाई गई हो। अधिकतम संभव अभूतपूर्व कड़ी सजा राहुल गांधी को ही क्यों सुनाई गई ? क्या यह महज एक संयोग है कि दो साल की सजा के बिना किसी सांसद को अयोग्य करार नहीं दिया जा सकता, सो राहुल गांधी को इसी रास्ते संसद से बाहर कर दिया जाए ?

9. यह भी देखिए कि सूरत के जज साहब के फैसला सुनाने के 24 घंटे बीतने से पहले ही लोकसभा में राहुल गांधी को अयोग्य करार देने की अधिकसूचना जारी कर दी गई। आज तक ऐसे मामलों में कार्रवाई में कम–से–कम एक महीना लगता रहा है। इस बार बिजली–सी तेजी क्यों ? इसलिए तो नहीं कि कहीं राहुल गांधी न्यायालय जाकर इस फैसले के खिलाफ स्टे न ले सकें ? आपको नहीं लगता है कि कहीं किसी ने पहले से कोई योजना बना कर रखी थी ?

10. संविधान के अनुच्छेद 103 के अनुसार किसी सांसद को अयोग्य घोषित करने से पहले राष्ट्रपति की मंजूरी लेनी पड़ती है। इस मामले में राष्ट्रपति की अनुमति ली गई ? राष्ट्रपति से अनुमति मांगी जाती तो राष्ट्रपति चुनाव आयोग की राय मांगतीं और राहुल गांधी की तत्क्षण बर्खास्तगी में देर हो जाती।

मेरे इन 10 सवालों के जवाब में उन भाई साहब ने बस 'हूं' की और निकल गए! लेकिन आप बताएं कि क्या यह एक सामान्य न्यायिक प्रक्रिया से दी गई सजा लगती है ? क्या आपको ऐसा नहीं लगता है कि किसी ने तय कर लिया था कि राहुल गांधी को अब संसद में बोलने नहीं देना है ? राहुल गांधी संसद में अडाणी के खिलाफ बोले थे और बार–बार उस मामले को उठाने के लिए बोलना चाहते थे। कोई उन्हें अडाणी के खिलाफ बोलने से क्यों रोकना चाहता था ? अब जज आप हैं, फैसला कीजिए।

बातचीत की और वह अंग्रेज सुन्दम् को रखने के लिए तैयार हो गया। गांधीजी पुनः उस अंग्रेज अफसर के पास गये जिसने सुन्दम् को मारा था और कहा, "आपने बाल सुन्दम् को बहुत बुरी तरह से मारा है। आपको कायदे से सजा दिला सकता हूं। पर मैं चाहता हूं कि आप इसे मुक्त कर दें और इसका गिरमिट उसके नाम लिखने के लिए राजी हों, तो मुझे सन्तोष होगा।" मालिक भी यही चाहता था। मजिस्ट्रेट ने मालिक को अपराधी ठहराकर बाल सुन्दम् का गिरमिट उसके नाम लिखना स्वीकार किया।

हिन्दुस्तानी मजदूरों ने पांच साल में अच्छी तरक्की कर ली। सब्जी एवं अन्य फल उगाकर अच्छा व्यापार करने लगे। घर बनाने के लिए जमीन खरीदी। कुछ मजदूर अच्छे जमींदार बन गये। कई तो स्वतंत्र व्यापारी भी हो गये। अंग्रेज व्यापारियों ने कभी नहीं सोचा था कि हिन्दुस्तानी हमसे ज्यादा अच्छा व्यापार करने लगेंगे। इस चिंता के कारण नेटाल सरकार ने विचार करके यह निर्णय लिया कि : (1) मजदूरी का इकरार पूरा हो जाने पर गिरमिटया वापस हिन्दुस्तान चले जायें, अथवा नया गिरमिटया भिजवाये, जिसे कुछ अधिक वेतन दिया जाये। (2) अगर वे वापस नहीं जाते हैं तो मजदूरी का नया इकरारनामा लिखेंगे, जिसमें हर साल 95 पौण्ड का कर देंगे। इस कानून को स्वीकार कराने के लिए दो अंग्रेज अफसर सर एनरी बींस एवं मि. नेसनका को भारत के अधिकारी मि. एलविज से मिलने के लिए भेजा गया। उन्होंने 95 पौण्ड का कर तो नामंजूर कर दिया लेकिन उसके स्थान पर 3 पौण्ड का कर लेने की स्वीकृति दे दी। जिसका मूल्य उस समय 45 रु. था, जो यहां के मजदूरों के लिए बहुत अधिक था। दुनिया के किसी भी देश में इस तरह का कानून नहीं था। तीन पौण्ड का कर गांधीजी को नासूर लगता था और वे इसे किसी भी तरह समाप्त कराना चाहते थे। तीन साल अफ्रिका में रहने के पश्चात गांधीजी 6 माह के लिए भारत आये और उन्होंने अपना यह कर्त्तव्य समझा कि भारतवासियों को दक्षिण अफ्रीका में रहनेवाले लोगों की हालत के बारे में ज्यादा से ज्यादा जानकारी प्रदान करें। इसलिए उन्होंने एक छोटी पुस्तिक अफ्रीका के संबंध में लिखी, जिसकी दस हजार प्रतियां छपवाई। इसे उन्होंने देश के सभी समाचार पत्रों के सम्पादकों को भेजी। इस पुस्तक को ब्रिटेन की सरकार के पास भी भेजा।

गांधीजी लगातार यह प्रयास करते रहे कि भारत का कोई बड़ा नेता अफ्रीका आये और यहां की स्थिति को देखकर इस कानून को खत्म करने में सहयोग करे। गोखले को पत्र लिखकर उन्होंने अपनी इस भावना से अवगत कराया। गांधीजी की बात को समझकर 25 फरवरी, 1910 को भारत की कौंसिल ने एक प्रस्ताव किया कि नेटाल का कोई भी भारतीय मजदूर भारत नहीं भेजा जाये। गोखले ने भारत सरकार से इच्छा व्यक्त की कि वे अफ्रिका जाना चाहते हैं और वहां पर भारतीयों की दशा की जानकारी प्राप्त कर अपनी रिपोर्ट सरकार को देंगे। सरकार ने गोखले की बात मान ली और 6 हफ्ते के लिए अफ्रीका जाने की अनुमति दे दी। इसकी जानकारी उन्होंने गांधीजी को दी और कहा कि उनका पूरा कार्यक्रम बनाकर सूचित करें, जिससे वे ज्यादा–से–ज्यादा स्थानों पर जाकर लोगों से सम्पर्क कर सकें। यह समाचार गांधीजी के लिए बहुत सुखद था। गोखलेजी उस समय (सन् 1911 में) इंग्लैण्ड गये हुए थे, वहीं से उनका दक्षिण अफ्रिका जाने का कार्यक्रम बना।

22 अक्टूबर, 1912 को गोखलेजी केपटाउन पहुंचे। गांधीजी ने वहां छोटी–छोटी जगहों पर, जहां ज्यादा भारतीय रहते थे, बैठके कीं और अंग्रेज अफसरों से मुलाकात कराई। अंतिम पड़ाव प्रिटोरिया में एक कार्यक्रम रखा गया जहां पर सरकार के दो सम्माननीय मंत्रियों के साथ जनरल मि. बोथ एवं जनल मि. स्मूथे ने भी भाग लिया। सभा में वरिष्ठजनों ने गांधीजी से अफ्रिका के सम्बन्ध में विस्तृत नोट बनाने के लिए कहा। अफ्रिका के भारतवासियों की क्या दशा है, इसकी विस्तार से व्याख्या की गयी, जो करीब दो घंटा चली। चर्चा के बाद निर्णय लिया गया कि इस काले कानून 3 पौण्ड को रद्द किया जाय। भारतीयों के साथ जो व्यवहार किया जाता है, उसमें सुधार लाया जाय।

लेकिन गोखले के भारत आने के पश्चात अंग्रेज सरकार ने काला कानून जारी रखा। गांधीजी ने पूरी सूचना गोखलेजी को भेजी और यह भी लिखा कि जब तक हम जिंदा हैं, इस कानून के खिलाफ लड़ते रहेंगे। और इस लड़ाई ने दक्षिण अफ्रीका में विकराल रूप ले लिया। जगह–जगह आन्दोलन प्रारम्भ हो गये। अंततः 30 जून सन् 1914 को यह कानून रद्द हो गया।

प्रकृति की अपरिमित लूट और पर्यावरणीय संकट

पवन नागर

प्रकृति की अपनी एक व्यवस्था है जिसमें भरपूर उत्पादन होता है। वह भी बिना रासायनिक खाद और कीटनाशक का इस्तेमाल किए। इस उत्पादन को वही व्यक्ति प्राप्त कर सकता है, महसूस कर सकता है जिसके पास प्रकृति के नियम–कायदों, कानूनों को समझने का नज़रिया है। लालच और अहंकार में डूबे व्यक्तियों को यह उत्पादन दिखेगा ही नहीं, क्योंकि ये लोग प्रकृति के सहायक हैं ही नहीं।

वर्तमान में जलवायु परिवर्तन सुविधा भोगी आधुनिक इंसान के लिए बहुत बड़ी चुनौती बनकर सामने आ रहा है। दिन–ब–दिन यह समस्या बढ़ती ही जा रही है, पर मजाल है कि किसी व्यक्ति के कान पर जूं भी रेंग जाए। व्यक्ति को छोड़िए, सरकारों के कानों पर भी जूं नहीं रेंग रही है, सिर्फ बड़ी–बड़ी घोषणाएं हो रही हैं, पर ज़मीनी स्तर पर सब 'निल–बटे–सन्नाटा' ही पसरा हुआ है।

प्रकृति हमको मुफ्त में बेशकीमती सौर ऊर्जा दे रही है, असंख्य जड़ी–बूटियां दे रही है, असंख्य वनस्पतियां दे रही है। बहुमूल खनिज तत्व भी इसी प्रकृति की देन हैं। पानी और हवा तो बहुत ही महत्वपूर्ण हैं, जिनके बिना जीना संभव ही नहीं है। इसे दुर्भाग्य ही कहेंगे कि पृथ्वी पर 70 प्रतिशत पानी होने के बावजूद और हर वर्ष इतनी वर्षा होने के बाद भी हमको जल–संकट का सामना करना पड़ता है।

इतने आधुनिक और तकनीक से युक्त होने के बावजूद हम यह समझने को तैयार नहीं हैं कि ये प्राकृतिक साधन सीमित हैं, इसलिए इनका इस्तेमाल हमें संयम के साथ करना है। हम तो अंधाधुंध इन सीमित संसाधनों का दोहन अपने लालच के लिए कर रहे हैं और इसीलिए साल–दर–साल कोई–न–कोई प्राकृतिक आपदा दुनिया में आती ही रहती है। आधुनिक मानव उस आपदा के सामने घुटने टेक देता है, फिर भी इन आपदाओं से कुछ सीख नहीं पा रहा है। इंसान की याद्दाश्त बहुत कमज़ोर हो गई मालूम होती है, इसीलिए हर आपदा को वह तुरंत भूल जाता है और पूर्ववत लालच भरी भागमभाग में लग जाता है।

तो हमें क्या करना चाहिए ? यहां हम इस पर बात नहीं करेंगे कि दुनिया भर की सरकारों को क्या करना चाहिए, क्योंकि वह हमारे हाथ में नहीं है। हम तो इस पर बात करेंगे कि किसान होने के नाते, भू–स्वामी होने के नाते और एक धरतीवासी होने के नाते हम क्या कर सकते हैं। हमको करना यह होगा कि भूलने की आदत को सुधारना होगा। बारम्बार आ रहीं आपदाओं को खतरे की घंटी मानना होगा और भविष्य में इन आपदाओं की तीव्रता और न बढ़े, इसके लिए अपनी लालच पर लगाम लगाना सीखना होगा। प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन बंद करना होगा। हमें आवश्यक और अनावश्यक में अंतर करना सीखना होगा। हमें अपने उपभोग की गति का प्रकृति के पुनर्चक्रण की गति से सामंजस्य बैठाना होगा।

दूसरा काम, हमें प्रकृति के पुनर्चक्रण में सहयोग करना होगा। मतलब, हम प्रकृति से जितना ले रहे हैं, उतना ही वापस लौटाने का संकल्प करना पड़ेगा। पूरी दुनिया लेन–देन पर टिकी है, हमारा हर व्यवहार लेन–देन पर ही आधारित है, तो फिर प्रकृति के मामले में हम इस बात को कैसे भूल जाते हैं ? पहले यदि कोई रिश्तेदार या पड़ोसी कोई वस्तु आपको देने घर आता था तो लोग उसको खाली हाथ नहीं जाने देते थे, बल्कि उसी के बर्तन में कुछ–न–कुछ भरकर वापस देते थे। मतलब, उसने जितना दिया उसके बदले उसे हमने भी कुछ लौटाया। हमें प्रकृति के साथ भी यही करना है।

यदि हम प्रकृति से 100 प्रतिशत तत्व ले रहे हैं तो कम–से–कम 70 प्रतिशत तो उसे लौटाएं, तब जाकर संतुलन बनेगा और तब हम भी खुश रहेंगे और प्रकृति भी खुश रहेगी। हमें पुनर्चक्रण से प्रकृति का सहयोग करना ही होगा, क्योंकि यदि प्रकृति स्वयं को पुनर्चक्रित नहीं कर पाई तो हम सबका मरना तय है। तो पुनर्चक्रण में सहयोग के लिए किसान भाइयों को क्या करना चाहिए ? कृषि उत्पादन के लिए आप प्रकृति से जो दो चीज़ें सबसे अधिक ले रहे हैं उन्हे प्रकृति को वापस लौटाइए। कौन सी दो चीजें ? पानी और पेड़। पानी की सबसे ज्यादा खपत खेती में होती है और खेती के लिए साल–दर–साल अधिकाधिक

जंगल साफ किए जा रहे हैं। इसीलिए इन दो चीजों की भरपाई की हमारी जिम्मेदारी बनती है। कैसे करेंगे ?

इसके लिए हमें अपने-अपने खेतों में छोटे-छोटे तालाब एवं कुंए बनवाने होंगे और खूब सारे पेड़ लगाने होंगे। किसानों को कुल ज़मीन के 10 प्रतिशत हिस्से में बागवानी और 10 प्रतिशत हिस्से में तालाब या कुंए की व्यवस्था करनी चाहिए। तालाब और कुंए बनाने से जहां एक ओर सिंचाई के लिए भरपूर पीनी उपलब्ध होगा, वहीं खेत की मिट्टी और हवा में नमी बढ़ने से उत्पादन में वृद्धि होगी। साथ ही भू-जल स्तर भी बढ़ेगा। बागवानी से पेड़ों की संख्या में इज़ाफा होगा, जिससे तापमान कम होगा, वातावरण में कार्बन का स्तर घटेगा और बारिश बढ़ेगी। मिट्टी का क्षरण रुकेगा, जमीन अधिक उपजाऊ बनेगी।

किसानों के मित्र-पक्षियों एवं कीटों की संख्या बढ़ने से फसलों का परागण एवं कीट-नियंत्रण अधिक प्रभावी तरीके से होगा, वो भी फ्री में । किसानों के लिए अतिरिक्त कमाई का जरिया हो जाएगा, एक बार लगाओ और फिर उम्र भर कमाओ। इससे प्रकृति का पुनर्चक्रण तो होगा ही, साथ ही किसानों को भी ढेर सारे लाभ मिलेंगे। कुल ज़मीन के 80 प्रतिशत हिस्से में खेती, 10 प्रतिशत हिस्से में बागवानी और सब्जी की खेती और 10 प्रतिशत में तालाब होगा तो फिर देखिएगा कि आत्मनिर्भरता कैसे नहीं आती।

तीसरा काम, हमें अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के वैकल्पिक स्त्रोत तलाशने होंगे, ताकि प्रकृति को नुकसान पहुंचाने वाले काम बंद हो सकें। उदाहरण के तौर पर, आज बिजली हमारे लिए उतनी ही महत्पूर्ण हो गई है जितनी कि हवा। बिजली के बिना कोई भी काम होता नहीं, लेकिन अधिकांश बिजली कोयला जलाकर पैदा की जाती है और कोयले का दहन जलवायु परिवर्तन की समस्या का सबसे बड़ा कारण है। इसका दूसरा बड़ा कारण है, जीवाश्म ईंधनों (पेट्रोल, डीजल और रसोई गैस) का दहन। यदि हम अपनी बिजली और अपना ईंधन किन्हीं और स्त्रोतों से प्राप्त कर सकें तो हम प्रकृति को प्रदूषित होने से बचा सकते हैं।

हम किसान भाइयों को अधिक-से-अधिक सौर-ऊर्जा का उपयोग करना चाहिए, घरों में भी और खेतों में भी। यदि हर खेत में सोलर पंप लगा दिए जाएं तो बिजली की बचत होगी। ईंधन के लिए गोबर-गैस या बॉयो-गैस का उपयोग बहुत अच्छा विकल्प है। तीसरी चीज है प्राकृतिक खाद का उपयोग। रासायनिक खाद एवं कीटनाशकों के उत्पादन एवं परिवहन में बड़ी मात्रा में ऊर्जा खर्च होती है तथा जीवाश्म ईंधनों का उपयोग होता है, साथ ही ये रासायनिक उर्वरक व कीटनाशक मिट्टी, पानी और हवा को भी बुरी तरह प्रदूषित करते हैं। इनके स्थान पर प्राकृतिक उर्वरकों का उपयोग करें। एकल फसल खेती से मिट्टी में पोषक तत्वों की कमी हो जाती है और जैव-विविधता खतरे में पड़ जाती है। इसलिए हमें चाहिए कि हम बहुफसलीय खेती करें, इससे खेती में हमारा जोखिम भी कम होगा और प्रकृति का संतुलन भी बना रहेगा।

इस कष्ट से बचने और आनेवाली पीढ़ियों को समस्याओं से बचाने का सबसे बेहतर तरीका यही है कि हम सब मिलकर प्रकृति की सहायता करें। अपने लालच के लिए प्राकृतिक संसाधनों का बेलगाम दोहन बंद करें और प्रकृति से जो ले रहे हैं उसे वापस प्रकृति को लौटाने की भी नीयत रखें। तभी हम सबको प्राकृतिक आपदाओं से निजात मिलेगी। बीमारियों से निजात मिलेगी। इस बात का ध्यान हमेशा रखें कि हमें प्रकृति को नुकसान पहुंचाने वाला कोई कार्य नहीं करना है, फिर चाहे आप किसी भी व्यवसाय में क्यों न हों। यह दृढ़ निश्चय हर व्यक्ति को करना होगा कि 'लालच से नाता तोड़ो, प्रकृति से नाता जोड़ो।'

(सप्रेस)

सर्वोदय-साहित्य : प्रचार-प्रसार

हर साल की तरह इस वर्ष भी 'बाबुलनाथ मंदिर चैरिटीज्' के आर्थिक सहयोग से फ्लोरा फाउन्टेन व गांधी बुक सेंटर में 30 जनवरी से 4 फरवरी तक 'गांधी-विनोबा-सर्वोदय' की करीब 200 से अधिक किताबों की प्रदर्शनी एवं बिक्री की गई। इन सभी किताबों पर 40 प्रतिशत छूट दी गई। प्रदर्शनी को लोगों का अच्छा प्रतिसाद मिला। केवल छह दिनों में कुल रु. 2.6 लाख कीमत की किताबों की बिक्री हुई। अपने अभिप्राय में कई लोगों ने यह विचार व्यक्त किया कि वर्तमान समाज में बढ़ती हिंसा, बेरोजगारी जैसी समस्याओं का समाधान केवल गांधी-विनोबा के विचारों में है। इसलिए जगह-जगह पर इस तरह की प्रदर्शनी के माध्यम से ज्यादा-से-ज्यादा लोगों तक इन विचारों व मूल्यों का प्रचार-प्रसार होना चाहिए।

गांधी की वसीयत के वारिस

अरुण तिवारी

हम वर्ष 2023 में हैं जो गांधी का 155वां 'जयंती वर्ष' भी है और 75वां 'पुण्यतिथि वर्ष' भी। हालांकि गांधी का वसीयतनामा लंदन से सटे शहर लडलो के रेसकोर्स में कभी का नीलाम किया जा चुका है; फिर भी इस साल एक बार फिर उस पर चर्चा करें। हम सोचें कि गांधी द्वारा गुजराती में लिखे दो–पेज के मसौदे को उनके सहयोगियों ने 'हरिजन' में 'गांधीजी की अंतिम इच्छा व वसीयत' शीर्षक से प्रकाशित क्यों कराया ? गांधी, कांग्रेस संविधान का नया मसौदा क्यों लिख रहे थे ? वे क्यों चाहते थे कि कांग्रेस लोगों की सेवा करनेवालों के संघ के रूप में तब्दील हो जाए ?

वे क्यों चाहते थे कि 'लोक सेवक संघ' के रूप में तब्दील होने पर कांग्रेस अपने मिशन की पूर्ति के लिए ग्रामीणों व अन्य लोगों के बीच से धन जुटाये तथा ग़रीब आदमी के पैसे की वसूली पर विशेष जोर हो। गांधी सैन्य–शक्ति पर नागरिकों की प्रधानता के लिए संघर्ष में लोकतांत्रिक लक्ष्य की दिशा और भारत की प्रगति क्यों देखते थे ? उन्होंने इन सबको राजनीतिक दलों और सांप्रदायिक निकायों के साथ अस्वस्थ प्रतिस्पर्धा से दूर रखने के लिए क्यों कहा था ? सबसे बड़ा प्रश्न यह कि गांधी ने सात लाख गांवों के संदर्भ में ही क्यों कहा कि उनकी सामाजिक, नैतिक व आर्थिक आजादी हासिल करना अभी बाकी है। नगरों और कस्बों के बारे में क्यों नहीं ?

इन प्रश्नों का उत्तर तलाशने के लिए 2023 के वातावरण में ही देखना होगा। क्या विरोधाभासी स्थिति है! मानसिक तौर पर बीमार कर देने वाली दलगत् व सांप्रदायिक प्रतिस्पर्धाओं और खेमेबंदी ने मीडिया, फिल्म, खेल व बौद्धिक जगत की हस्तियों से लेकर आमजन तक को अपना औजार व शिकार दोनों बनाया हुआ है। यह वैश्विक तापमान से धधकते, सूचना–प्रौद्योगिकी के पीछे भागते तथा दरकते रिश्तों का समय है और हम हैं कि 'गांधी–गोडसे युद्ध : एक टीजर' जैसे वीडियो लेकर आ रहे हैं। गलाकाट बाजारू प्रतियोगिता और बेईमानी ने छोटी काश्तकारी को जिस मुकाम पर पटक दिया है, यह किसी से छिपा नहीं है। पढ़ाई व नौकरियों में 'नंबर दौड़' तथा दवाई व इलाज में सीधे डकैती की मार सब पर है।

प्रश्नों के उत्तर इस विश्लेषण में भी हैं कि वर्ष–2023 के साथ कुछ पुरानी आफतें बढ़ने वाली हैं। अधिक महंगाई, अधिक बेरोज़गारी, अमीरी–गरीबी के बीच अधिक बड़ी खाई के साथ–साथ वैश्विक तापमान व मौसम में ज्यादा उठापटक। सबसे बुरी बात यह कि इन सभी का सबसे बुरा असर सबसे गरीबों, कमजोरों के साथ–साथ मार्ग तलाशते हमारे युवाओं पर पड़ने वाला है। वर्ष–2023 में वर्तमान के इस परिदृश्य को सामने रखिए और गांधी द्वारा तैयार कांग्रेस संविधान के मसौदे के एक–एक प्रावधान को पूरी सावधानी से पढ़िए। समझना आसान हो जाएगा कि गांधी बार–बार क्यों जिंदा हो उठते हैं। वसीयत क्यों चाहती है वारिस ?

वसीयतनामें में एक–एक शब्द के रूप में गांधी खुद मौजूद हैं, यह बताने के लिए कि वे अपने समय से बहुत आगे का विचार थे। गांधी जानते थे कि नगर सुविधाओं की बौछार कर सकते हैं, किन्तु बगैर गांवों के नगर टिक नहीं सकते। जीवन जीने की बुनियादी जरूरतों की पूर्ति तो गांव ही कर सकते हैं।

साफ हवा, पानी, भोजन, प्राकृतिक आवास, स्वास्थ्य, संस्कार और सामुदायिकता। वे यह भी जानते थे कि हवा–पानी–मिट्टी ही वे फैक्टरी हैं, जिनमें डाला एक बीज कई गुना होकर वापस लौटता है। किसान व कारीगरों की उंगलियां ही ऐसा सामुदायिक औज़ार हैं, जो बगैर किसी प्रतिस्पर्धा में फंसे व्यापक रोज़गार व सभी के लिए समृद्धि को टिकाये रख सकती हैं।

गांधी की 'नई तालीम' इसे ही मजबूत करना चाहती थी। वे जानते थे कि 'ग्राम–स्वराज' के उनके मंत्र में गांवों को बाजार, सरकार, परावलम्बन व वैमनस्य से आज़ाद बनाये रखने की शक्ति है। आर्थिक लोकतंत्र के बिना सामुदायिक व राजनीतिक लोकतंत्र अधूरा रहने वाला है। उन्हें यह भी पता था कि गांवों को अपनी इस शक्ति को बरकार रखने के लिए नैतिक क्षमताओं को बराबर बढ़ाते

प्रकाशन तिथि 28 / 04 / 2023
Delhi Postal Regd. No. DL (C)-05/1423/2022-2024
R.No.21841/1971 Posted at L.P.C.- Delhi. R.M.S.Delhi-6 on 1st, 2nd May, 2023

रहना होगा। इसीलिए गांधी ने अंग्रेजी साम्राज्य से आजादी के बाद की आज़ादी के केन्द्र में गांवों को रखा।

गांधीजी साम्राज्यवाद और सामंतवाद दोनों के घोर विरोधी थे। गांधी जानते थे कि साम्राज्यवाद व सामंतवाद कमज़ोर के शोषण पर पनपने वाली अमरबेलें हैं। ये ऐसी हिंसक प्रवृत्तियां हैं जो मरती नहीं; सिर्फ कमज़ोर पड़ सकती हैं। भारत आज़ाद हो गया तो क्या; अनुकूल परिस्थितियां पाते ही ये फिर बलवती होंगी, किसी–न–किसी शक्ल में। वे जानते थे कि ऐसा हुआ तो सबसे पहले दुष्प्रभावित गांव, गरीब और कमजोर ही होगा।

आज ऐसा ही हो रहा है। पानी, किसानी, जवानी को अपने उत्थान के लिए आंदोलन करने पड़ रहे हैं। अमीरी–गरीबी की खाई लगातार बढ़ती जा रही है। आर्थिक व लोकतांत्रिक परिसरों में सामंतवाद व साम्राज्यवाद दोनों की नई हनक पूरी बेशर्मी के साथ सुनाई दे रही है। गांधी ने इसीलिए कांग्रेस संविधान का नया मसौदा लिखा। इसीलिए वे कांग्रेसी कार्यकर्ताओं को स्वायत्त निकायों से जोड़कर सेवा संस्कार के ऐसे अग्निकुण्ड में उतार देना चाहते थे, जिसमें जलन के बाद या तो सूरज बनकर संसार को प्रकाशित किया जा सकता है अथवा भस्म होकर खाद बनकर।

गांधी की यह जिद्द कदापि नहीं होगी कि कांग्रेस उनके मसौदे को जस–का–तस अपना ले, किन्तु उस वक्त यदि कांग्रेस अपने संविधान के गांधी–मसौदे पर गंभीर हुई होती तो 'कांग्रेस सेवा दल' और राजीव गांधी पंचायती–राज संगठन के रचनात्मक कार्यक्रम गांव–गांव में सराहे जा रहे होते। कांग्रेस–कोई एक दल न होकर ज़मीनी रचनात्मक कार्यकर्ताओं का एक ऐसा समुदाय बन गया होता, जो भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था में से सत्ता और प्रजा के भाव को कम ही करता; अधिक नहीं।

सेवा, सहकार और सह–अस्तित्व की बुनियाद पर खड़ा गांधी–विचार यह करा सकता है। कांग्रेस चाहे तो अभी भी गांधी के सपनों का हिंदोस्तान बनाने की राह अपना सकती है। कठिन है, लेकिन नामुमकिन नहीं। यदि हमारे अन्य स्वयंसेवी संगठन, कांग्रेस संविधान के गांधी मसौदे मात्र को ही अपना संविधान बना लें, उसे पूरी ईमानदारी, सातत्य, सादगी व सेवाभाव के साथ अमल में उतारने की सामुदायिक कोशिश करें तो मौजूदा चुनौतियों के समाधान संभव हैं।

स्वयंसेवी जगत को एक बार फिर नए सिरे से पहल करनी होगी। बाहरी पहल से पहले अपनी सफाई करनी होगी। सर्वप्रथम वही कार्य उसी समुदाय के बीच करना होगा, जिसे उसकी जरूरत है। उसी तरीके से करना होगा, जिससे वह समुदाय लम्बे समय तक उस कार्य के लिए किसी बाहरी संगठन पर आश्रित न रहें; सामुदायिक तौर पर परस्परावलंबी बन जायें। वसीयतनामे का एक संकेत स्पष्ट है कि आंदोलन का प्रचार आवश्यक है, रचनात्मक कार्य को प्रचार से दूर रहना चाहिए। रचना के लिए राजमार्ग नहीं, पगडण्डी ही अच्छी। सीख साफ है कि रचनात्मक कार्य में लगे संगठनों को अपने बैनर को पीछे, कार्य व समुदाय को आगे रखना चाहिए।

स्वयंसेवी संगठनों को संसाधनों की शुचिता का ख्याल रखना होगा। अन्य स्त्रोतों से सशर्त मिल रहे संसाधनों को लेना बंद करना होगा। स्वयंसेवी संगठनों को अपने मिशन की जरूरत के संसाधनों को उन्हीं समुदायों के बीच से जुटाना चाहिए, जिनके बीच वे कार्य कर रहे हैं। ये सब करते हुए संगठनों को सेवाग्राम की नींव रखने आये गांधी के उस संबोधन तथा 'बापू कुटी' की सादगी व उपयोग करने वाले अनुशासन को नहीं भूलना चाहिए जो सामाजिक कार्यकर्ताओं को गांवों में एक शिक्षक अथवा अपनी मंशा थोपने वाले की तरह नहीं, एक सेवक की तरह जाने का आह्वान करता है; उन्हें अपनी वसीयत का गांधी बनते देखना चाहता है। *(सप्रेस)*

स्वामी गांधी स्मारक निधि के लिए राजघाट, नई दिल्ली–110002 से संजय सिंह, गांधी स्मारक निधि द्वारा प्रकाशित व मुद्रित
जैन ऑफसेट प्रिंटर्स, 198/2–1, फारचुन टावर, रमेश मार्केट, नई दिल्ली–110065
सम्पादक – रामचन्द्र राही